मंथन क्रमांक–120 ''संगठन कितनी आवश्यकता कितनी मजबूरी''

सामान्यतया संगठन और संस्था को एक सरीखा ही मान लिया जाता है किन्तु दोनो बिल्कुल अलग–अलग होते हैं। संगठन को अंग्रेजी में आर्गेनाईजेशन कहते है और संस्था को इंस्टीटयूशन, यद्यपि दोनो के अर्थ कभी–कभी मिला दिये जाते है। संगठन संस्था से बिल्कुल भिन्न होता है। संगठन अधिकार प्रधान होता है संस्था कर्तव्य प्रधान। संगठन अपने अधिकारों के लिये संघर्षरत रहता है जबकि संस्था ऐसे किसी संघर्ष से दूर रहती है। संगठन में आमतौर पर अपनत्व होता है। उसमें अपने जुडे हुये लोग साथी तथा सहयोगी माने जाते है और संगठन से बाहर के लोग बाहरी। संस्था में ऐसा भेद नहीं होता बल्कि संस्था अपनो की अपेक्षा दूसरों को अधिक महत्व देती है। संगठन कभी सुरक्षा तक सीमित नहीं रहता, संस्था को सुरक्षा की ऐसी कोई चिंता नहीं रहती। संगठन मजबूतों के शोषण से बचने के लिये बनाया जाता है किन्तु बाद में संगठन कमजोरों का शोषण करने लगता है। संस्था कभी कमजोरों का शोषण करती ही नही है बल्कि कमजोरो को शोषण से बचाने में सहायता करती है। संगठन में शक्ति होती है। जो लोग संगठित होते है वे असंगठितों की तुलना में कई गुना अधिक शक्तिशाली हो जाते है। संगठन में शक्ति केन्द्रित होती है। संस्थाओं में शक्ति अकेन्द्रित होती है। संस्थाये सेवा कार्य में लगी होती है और कभी भी शक्ति संग्रह का प्रयास नहीं करती। संगठन अपने संगठन के हित में नैतिकता की परिभाषा भी बदलते रहता है। वह दूसरों से कर्त्तव्य की अपेक्षा करता है और उन्हें नैतिकता की सलाह देता है किन्तु स्वयं कभी कर्तव्य की चिंता नही करता। संगठन का शक्तिशाली होना ही उसकी नैतिकता की परिभाषा होती है। संगठन प्रचार माध्यमों का भरपूर उपयोग करता है। आमतौर पर वह इसके लिये छल कपट का भी सहारा लेता है। संस्थाएं प्रचार माध्यमों से दूर रहती है। वे प्रचार के लिये कभी छल कपट का सहारा लेती ही नहीं। संगठन की सोच बहुत संकीर्ण होती है और संस्थाओं की व्यापक। संगठन दूसरे संगठनों से प्रतिस्पर्धा करते है किन्तु संस्थाएं अन्य संस्थाओं की सहायता करती है क्योंकि संस्थाओं का मुख्य उददेश्य सेवा होता है तो संगठनों का संग्रह।

दुनियां में कई प्रकार के संगठन भी बने हुये और संस्थाएं भी है। राजनैतिक, सरकारी कर्मचारियों के, किसानों और व्यापारियों के, महिला और पुरूष के, युवक वृद्धों के तथा अन्य अनेक आधार पर संगठन बने हुये है। ये संगठन दिन–रात समाज में टकराव और अव्यवस्था फैलाते रहते है। यदि हम और स्पष्ट विचार करे तो दुनियां में धर्म के नाम पर इस्लाम और राजनीति के नाम पर साम्यवाद पूरी तरह वैचारिक धरातल पर भी संगठन है और क्रियात्मक रूप में भी। संघ परिवार और सिख समुदाय भी ऐसे ही संगठन माने जाते है। रेड क्रोस सोसायटी संस्थाओं के रूप में बहुत विख्यात है। किन्तु इन सब से हटकर गायत्री परिवार, आर्य समाज, सर्वोदय जैसे कहे जाने वाले समूह संस्था माने जाते है, संगठन नही। इस्लाम, संघ, साम्यवाद, सिख तथा गायत्री परिवार, आर्य समाज, सर्वोदय आदि की कार्य प्रणाली और परिणाम ठीक से देखने पर संगठन और संस्था का अंतर साफ पता चल जाता है।

मुसलमानों और सिखों में भी कुछ सामाजिक संस्थाएं है। यद्यपि हिन्दुओं की तुलना में कम है। धीरे–धीरे भारत में संस्थाएं कम हो रही है और संगठन बढ रहे है। संगठनों का जितना ही विस्तार हो रहा है उतना ही अधिक समाज में टकराव बढ रहा है और उसी गति से अव्यवस्था भी बढ रही है। राजनैतिक दल तो लगभग पूरी तरह संगठन का रूप ले चुके है। राजनैतिक दल अप्रत्यक्ष रूप से व्यावसायिक संगठन तो है ही किन्तु धीरे धीरे आंशिक रूप से अब आपराधिक संगठन सरीखा सा भी होते जा रहे है। आदर्श स्थिति में राजनैतिक कार्य संस्थागत अधिक और संगठनात्मक कम माना जाता है किन्तु वर्तमान समय में राजनीति में संस्थागत नैतिकता लगभग शून्य हो गई है और संगठनात्मक दुर्गुण हावी हो गये है।

जब आम लोगो को व्यवस्था से न्याय मिलने की पूरी उम्मीद रहती है तब संगठन नहीं बनते। यदि बनते है तो उन संगठनों को समाज में कोई सम्मान नहीं मिलता। किन्तु जब समाज में अव्यवस्था फैल जाती है, न्याय मिलना अनिश्चित हो जाता है तब हर व्यक्ति सुरक्षा के लिये किसी न किसी प्रकार से संगठित होने का प्रयास करता है। इसका अर्थ हुआ कि सभी अपराधियों के विरूद्ध सारे शरीफ लोगों को संगठित हो जाना चाहिये। यदि उसके बाद भी कोई खतरा हो तब सरकार को सक्रिय होकर न्याय और सुरक्षा की गांरटी देनी चाहिये। किन्तु जब प्रवृत्ति का आधार छोडकर अन्य आधारों पर संगठन बनने लगे तथा सरकार भी न्याय और सुरक्षा की जगह अन्य संगठनों को मान्यता और प्रोत्साहन देने लगे तब अव्यवस्था फैलती है। जब समाज में अव्यवस्था फैलती है तब धुर्त या अपराधी स्वभाव के लोग प्रवृत्ति के आधार के विपरीत अन्य आधारों पर संगठित होना शुरू कर देते है। जब सारा कार्य सरकार अपने पास संभाल लेती है और सरकार में व्यवस्था टूटकर भ्रष्टाचार में बदल जाती है तब नये–नये संगठन सामने आकर उस भ्रष्टाचार या अव्यवस्था का लाभ उठाना शुरू कर देते है। यदि मेरे घर में सांप के घुसने की कोई संभावना न हो अथवा मैं निश्चित रहूॅं कि सांप घुसेगा तो व्यवस्था के द्वारा मेरी सुरक्षा निश्चित है तब मैं अपने घर में डंडा नहीं रखूॅंगा। असुरक्षा होने पर या सांप के घुसने पर मैं सतर्क भी रहूॅंगा या डंडा रखूॅंगा।

जब समाज में अपराधियों की बाढ आयी हुई हो और सुरक्षा का दायित्व संभाल रही सरकार जनकल्याण के आलतू फालतू कार्यो में व्यस्त हो तब स्वाभाविक है कि हर व्यक्ति अपनी सुरक्षा की स्वयं चिंता करे। ऐसी स्थिति में सुरक्षा के नाम पर संगठन बन जाते है और ऐसे संगठन बाद में कमजोरों का या असंगठितों का शोषण करते है। मैंने तो कई बार यह देखा है कि अनेक शरीफ लोग अपनी सुरक्षा के लिये अलग–अलग तरह के आपराधिक गिरोहो के साथ भी समझौता करने को बाध्य होते है। ऐसे लोग एक तरफ तो सरकार को टैक्स देते ही है दूसरी ओर संगठित गिरोह को भी टैक्स देने के लिये मजबूर रहते है। भारत में अब भी हिन्दू का बहुमत धार्मिक आधार पर संगठित नहीं होना चाहता किन्तु जिस तरह स्वतंत्रता के बाद भारतीय राजनीति ने अल्पसंख्यक तृष्टिकरण को बढावा दिया उससे हिन्दुओं के संस्थागत चरित्र को भी संगठित होने की मजबूरी दिखी। नरेन्द्र मोदी का निर्वाचन ऐसी ही मजबूरी

माना जा सकता है। सरकार का काम असुरक्षितों की सुरक्षा करना होता है। यदि सरकार अपना काम ठीक से करे तो संगठन बनेगे ही नहीं किन्तु सरकार अपना काम छोडकर एक ओर तो जुआ, शराब वैश्यावृत्ति और तम्बाकू रोकने में लग गयी तो दूसरी ओर उसने संगठनों को मान्यता भी दे दी। परिणाम हुआ कि भारत में कुकरमुतों की तरह गांव गांव में संगठन बन गये। हर क्षेत्र में किसी भी आधार पर अलग–अलग प्रकार के संगठन बनने लगे और सरकारें ऐसे संगठनों को मान्यता देकर प्रोत्साहित करने लगी। यहां तक कि सरकार संगठितों को संगठित होने की सलाह भी देने लगी। कितनी बेशर्म सलाह है कि हमारी सरकार महिलाओं को कराटे की ट्रैंनिग देती है या नागरिकों को शस्त्र का लाइसेंस देती है। सुरक्षा देना उसका काम है तो वह काम नहीं करती और सामाजिक बुराईयों को दूर करने के लिये अनावश्यक हस्तक्षेप करती रहती है जो उसका काम नहीं है। दहेज प्रथा सरकार दूर करती है और अपनी शारीरिक सुरक्षा के लिये महिला को टकराव के लिये प्रेरित करती है। यह समझ में नही आता। मेरी यह मान्यता है कि सारी समस्याओं की जड मुख्य रूप से राजनैतिक व्यवस्था में है जो संस्थाओं को निरूसाहित और संगठनवाद को प्रोत्साहित करती है। यदि सरकार जनहित के काम छोडकर सुरक्षा देने में सक्रिय हो जाये तो संगठनों की बाढ रूक सकती है। फिर भी मैं यह चाहता हूॅ कि हम आप संगठनवाद को प्रोत्साहित न करे यदि संगठन बनाना हो तो अन्य सब प्रकार के भेदभाव समाप्त करके प्रवृत्ति के आधार पर अर्थात अपराधियों के विरूद्ध शेष लोगो का एक संगठन बने। अन्य सारे संगठन समाप्त कर दिये जाये चाहे किसी आधार पर क्यों न बने हो। संस्थागत चरित्र को प्रोत्साहित किया जाये। साथ ही राजनीति को इस दिशा में मजबूर किया जाये कि वह आम लोगो को संगठित होने की मजबूरी से बचा सके अर्थात सुरक्षा और न्याय सबको दे और किसी प्रकार के बने हुये वर्तमान संगठन को सरकारी मान्यता समाप्त कर दे। संगठन बनाना किसी भी परिस्थिति में अल्पकालिक मजबूरी हो सकती है किन्तु दीर्घकालिक सिद्धान्त नहीं हो सकती। इसलिये हमे दीर्घकालिक समाधान की दिशा में प्रयत्नशील रहना चाहिये।

प्रश्नोत्तर ''संगठन कितनी आवश्यकता कितनी मजबूरी''

प्रश्न–1 क्या संगठन कर्तव्य प्रधान नहीं होते?
उत्तर–संगठन समाज को धोखा देने के लिये कर्तव्य का नाटक करते है किन्तु कभी कर्तव्य प्रमुख नही होते। किसी संगठन का उददेश्य कर्तव्य नहीं होता।
प्रश्न–2 क्या संस्थाओं में अपनत्व नहीं होता?
उत्तर–संस्थाएं दूसरो के प्रति कर्तव्य के उददेश्य से बनती है अपनों के प्रति नहीं। इसलिये संस्थाएं अपने लोगो की चिन्ता नहीं करती, दूसरो की करती है। संस्थाएं कर्तव्य प्रधान होती है, संगठन अधिकार प्रधान।
प्रश्न–3 क्या मजबूत लोग संगठन नहीं बनाते है?
उत्तर–जो सबसे मजबूत होता है उसे किसी का डर नही होता और जबतक डर नही होता तब तक संगठन नहीं बनता। जो लोग मजबूत है वे भी और अधिक मजबूतो से सुरक्षा के लिये संगठन बनाते है।
प्रश्न–4 क्या हर संगठन कमजोरो का शोषण करता है?
उत्तर–हर संगठन कमजोरो का शोषण करता ही है। संगठन के पास शक्ति होती है वह शक्ति मजबूतों से सुरक्षा के लिये होती है और जब सुरक्षा हो जाती है तब संगठन कमजोरो के शोषण में लग जाता है। आमतौर पर संगठन लक्ष्य घोषित करता है किन्तु कभी अपने को भंग नही करता क्योंकि वह लक्ष्य को अधूरा मानकर अपनी मांग बढाता है। संस्था लक्ष्य पूरा होने के बाद कभी कभी अपना काम बंद भी कर देती है।
प्रश्न–5 संगठन में शक्ति कहां से आती है?
उत्तर–कोई व्यक्ति अकेला है और उसकी शक्ति पंद्रह यूनिट है तो दो लोग एक साथ मिल जाये तो उसकी शक्ति पचास यूनिट हो जाती है। इस तरह कई लोगो के इकठठा होने से शक्ति अपने आप बढती चली जाती है। क्योंकि दूसरे लोग असंगठित होते है। संगठन में शक्ति अपने लोगो के ही इकठठा होने से आती है।
प्रश्न–6 क्या संगठन कभी कर्तव्य की चिंता नहीं करता।
उत्तर– संगठन अपने संगठन के लोगो के प्रति तो कर्तव्य की चिंता करता है किन्तु दूसरे के प्रति नहीं इसके विपरीत संगठन दूसरे के शोषण की चिंता अधिक करता है। संगठन जब सडक पर जुलूस निकालता है तब आम यात्री की परवाह नहीं करता और नैतिकता की परिभाषा बदल देता है।
प्रश्न–7 क्या संस्थाएं प्रचार माध्यमों से दूर रहती है?
उत्तर–आमतौर पर संस्थाओं को स्वयं प्रशंसा और प्रचार मिलता है। वे इसके लिये प्रयत्न नहीं करती। संगठनों से आम लोग घृणा करते है इसलिये उन्हे प्रचार माध्यमों का सहारा लेना पडता है
प्रश्न–8संगठन क्या संग्रह करते है?
उत्तर–संगठन धन संग्रह करते है, शक्ति संग्रह करते है, सुविधाएं इकठठा करते है तथा अधिक से अधिक अधिकार भी इकठठा करते है। संस्थाएं ऐसा नहीं करती।
प्रश्न–9 क्या सभी संगठन समाज में टकराव और अव्यवस्था फैलाते है?

उत्तर–संगठनों का उददेश्य टकराव और अव्यवस्था फैलाना नहीं है किन्तु संगठनों की सक्रियता का परिणाम टकराव और अव्यवस्था होता है। संगठन किसी अन्य को अपने से मजबूत नहीं होने देता। इसका परिणाम टकराव होता है।

प्रश्न–10 भारत में संगठन बढ रहे यह सही है किन्तु इसका कारण क्या है?

उत्तर–यदि आम नागरिकों को बिना संगठित हुये न्याय और सुरक्षा मिलती रहे तब संगठित होने की आवश्यकता नही पडती। जब व्यवस्था उन्हें न्याय और सुरक्षा नहीं दे पाती तब वे अपनी सुरक्षा के लिये संगठित होते है।

प्रश्न–11 क्या राजनीति संस्थागत कार्य है?

उत्तर– सैद्धातिक रूप से राजनीति संस्था कार्य है किन्तु व्यावहारिक धरातल पर उसका स्वरूप संगठनात्मक बन जाता है। राजनैतिक दल तो कभी संस्थागत होते ही नहीं, वे तो हमेशा संगठन ही होते है। जब राजनीति दलगत हो जाती है तब उसमें सारे संगठनात्मक दुर्गण समाहित हो जाते है।

प्रश्न–12 राजनीति में दुर्गण समाहित न हो इसका उपाय क्या है?

उत्तर–दलगत राजनीति के विचार को समाप्त कर दिया जाये और निर्दलीय संसद बनने लगे तब यह बीमारी कम हो सकती है। भारतीय संविधान मुख्य रूप से निर्दलीय था किन्तु बाद में नेताओं ने उसे दलीय आधार दे दिया। राजीव गांधी ने दल बदल विधेयक लाकर इसकी पहल की और अन्य सभी नेताओं ने उसका समर्थन कर दिया।

प्रश्न–13 न्याय और सुरक्षा नही मिलने के कारण अव्यवस्था होती है अथवा अव्यवस्था के कारण न्याय और सुरक्षा बाधित होती है?

उत्तर– अव्यवस्था और असुरक्षा एक दूसरे के पूरक होते है। वैसे आमतौर पर पहले असुरक्षा और अन्याय आते है उसके बाद संगठन बनने लगते है और उसके बाद अव्यवस्था शुरू हो जाती है।

प्रश्न–14 क्या आप वर्तमान भारत में अव्यवस्था मानते है?

उत्तर–जिस देश में हत्याओं के ठेके होते है हत्यारों की बकायदा दुकानें चलती है और सरकार तम्बाकू या शराब रोकने का प्रयत्न करती है उसे आप क्या कहेगे। क्या आप नहीं देखते कि भारत में बलात्कार बढ रहे है और सरकार बार बालाओं पर रोक लगा रही है। सरकार महिलाओं को अपनी सुरक्षा के लिये बल प्रयोग की ट्रैनिग दे रही है तो दूसरी ओर वैश्यालयों पर नियंत्रण भी कर रही है। मेरे विचार से भारत की अव्यवस्था चरम बिन्दु पर है।

प्रश्न–15 क्या संघ परिवार का संगठनात्मक स्वरूप उसकी मजबूरी है?

उत्तर– संघ का मजबूत होना उसकी मजबूरी रही है। स्वतंत्रता के बाद सभी सत्ता अल्पसंख्यक तुष्टीकरण को अपनी शक्ति का आधार बनाती रही परिणामस्वरूप आम हिन्दू संघ की ओर आकर्षित हुआ। अब मोदी सरकार के आने के बाद संघ भी हिन्दू तुष्टीकरण की दिशा में तेज गति से आगे बढ रहा है। यही कारण है कि संघ की शक्ति घट रही है। हिन्दू न कभी संगठित हुआ है न होना चाहिये और न ही भविष्य में होगा। इस्लाम और हिन्दुत्व की संस्कृति में मौलिक अंतर है। इस्लाम कभी अंसगठित नहीं होता और हिन्दुत्व कभी संगठित नही हो सकता। संघ परिवार को अपनी संगठनात्मक कार्यप्रणाली पर और विचार करना चाहिये।

प्रश्न–16 जब सरकार सुरक्षा और न्याय छोडकर अन्य कार्य करने लगे तब समाज क्या करे?

उत्तर–ऐसी परिस्थिति मे समाज की मजबूरी है कि वह अपनी सुरक्षा के लिये संगठित हो भले ही उसके परिणाम कुछ भी हो। वर्तमान में यही हो रहा है।

प्रश्न–17 क्या सभी संगठन अपने को शेर के समान मानते है?

उत्तर–संघ का नारा है संघे शक्ति कलोयुगे। शिव सेना अपने को शेर के समान मानती है। बाल ठाकरे की तुलना शेर से होती है। हर मुस्लिम संगठन अपने को शेर से तुलना करता है, गाय से नहीं। इसलिये जहां शक्ति संग्रह को महत्वपूर्ण माना जाता है वहां शेर की तुलना अधिक होती है गाय को शराफत का प्रतीक माना जाता है। हर संगठन दूसरों को गाय बनने की सलाह देता है और स्वयं शेर बनना चाहता है।

मंथन कमांक–121 ''राइट टू कंस्टीटयूशन''

दुनियां की समाज व्यवस्था में व्यक्ति एक प्राकृतिक और प्राथमिक इकाई होता है तो समाज अमूर्त और अन्तिम। दुनियां के सभी व्यक्तियों के संयुक्त स्वरूप को समाज कहते हैं। समाज की एक व्यवस्था होती है। प्रत्येक व्यक्ति के कुछ प्राकृतिक अधिकार होते हैं जिन्हें कोई भी सामाजिक व्यवस्था किसी भी परिस्थिति में तब तक न संशोधित कर सकती है न उसकी कोई सीमा बना सकती है जब तक व्यक्ति ने कोई अपराध न किया हो। व्यक्ति के उपर कानून, कानून के उपर तंत्र, तंत्र के उपर संविधान तथा संविधान के उपर समाज होता है। तंत्र हमेशा मैनेजर होता है जो समाज द्वारा बनाये गये संविधान के अनुसार कार्य करता है।

सारी दुनियां के सभी व्यक्तियों को मिलाकर समाज होता है इसलिये आदर्श व्यवस्था में पूरी दुनिया का एक संविधान होना चाहिये। ऐसे संविधान निर्माण में दुनिया के प्रत्येक व्यक्ति की समान भूमिका होनी चाहिये किन्तु अब तक ऐसी कोई विश्व व्यवस्था और विश्व संविधान नहीं बन पाया है इसलिये हम भारतीय संविधान को ही अन्तिम मानकर उसकी समीक्षा करने तक सीमित हैं।

तानाशाही और लोकतंत्र बिल्कुल विपरीत प्रणालियां हैं। तानाशाही में शासन का संविधान होता है और लोकतंत्र मे संविधान का शासन। भारत एक लोकतांत्रिक देश है इसलिये हम कह सकते है कि यहां संविधान का शासन है भी और होना भी चाहिये।

दुनियां के अधिकांश लोकतांत्रिक देशो में संविधान का शासन माना जाता है। यदि हम पूरी दुनियां का ऑकलन करें तो अन्य लोकतांत्रिक देशो मे भी वर्तमान संविधान अपेक्षित परिणाम नहीं दे पा रहे किन्तु यदि हम भारत का ऑकलन करे तो भारतीय संविधान सत्तर वर्षो में ही विपरीत परिणाम देता रहा है और यह गति आज तक बढ रही है। दुनियां के संविधान बनाने वालों की यदि समीक्षा करें तो हो सकता है कि उनसे कुछ भुलें भी हुई हो अथवा लम्बा समय बीतने के बाद कुछ परिस्थितियां बदली हों किन्तु भारतीय संविधान बनाने वालो से अनेक भूले तो हुई ही किन्तु उनकी नीयत पर भी संदेह होता है।

यदि हम लोकतंत्र को ठीक–ठीक परिभाषित करें तो लोकतंत्र का अर्थ होना चाहिये लोक नियंत्रित तंत्र। भारतीय संविधान निर्माताओ ने इसे बदल कर लोक नियुक्त तंत्र तक सीमित कर दिया। वेसे तो पूरी दुनियां में कहीं भी लोकतंत्र की आदर्श परिभाषा स्पष्ट नही है किन्तु भारत ने तो दुनियां से अलग लोकतंत्र की अपनी अलग परिभाषा बना ली। ऐसा लगता है कि हमारे संविधान निर्माताओ मे सत्ता प्राप्त करने की बहुत ज्यादा जल्दी थी। आदर्श स्थिति मे तंत्र प्रबंधक होता है और लोक मालिक किन्तु भारतीय संविधान निर्माताओ ने तंत्र को प्रबंधक की जगह शासक कहना शुरू कर दिया, जिसका अर्थ हुआ कि लोक मालिक नही बल्कि शासित है। तंत्र के अधिकार लोक की अमानत होते है किन्तु हमारे तंत्र से जुडे लोगो ने उन्हे अमानत न समझ कर अपना अधिकार मान लिया।

पूरी दुनियां मे न तो संविधान की कोई स्पष्ट परिभाषा बनी न ही मूल अधिकार की। यहां तक कि अपराध, गैर कानूनी, अनैतिक की भी अलग अलग व्याख्या दुनियां मे नही हो पाई। राज्य का दायित्व क्या हो और स्वैच्छिक कर्तब्य क्या हो, यह भी नही हो पाया। दुर्भाग्य से हमारे संविधान निर्माताओ ने जल्दवाजी मे या ना समझी मे इस प्रकार की परिभाषाओ पर चिंतन मंथन करने की अपेक्षा विदेशी संविधानों की नकल करना उचित समझा। परिणाम आपके सामने है कि आज तक ऐसे गहन मौलिक विषयो को कभी परिभाषित नही किया गया। न ही भारत मे और न ही दुनियां मे। संविधान की परिभाषा यह होती है कि तंत्र के अधिकतम और लोक के न्यूनतम अधिकारो की सीमाए निश्चित करने वाले दस्तावेज को संविधान कहते है और व्यक्ति के अधिकतम तथा तंत्र के न्यूनतम अधिकारो की सीमाएं निश्चित करने का कार्य कानून कहा जाता है। कानून तो तंत्र के द्वारा बनना स्वाभाविक है किन्तु संविधान या तो लोक के द्वारा बनाया जायेगा अथवा लोक और तंत्र की समान भूमिका होगी। किन्तु हमारे संविधान निर्माताओ ने तंत्र को ही संविधान संशोधन के असीम अधिकार दे दिये जिसका अप्रत्यक्ष अर्थ हुआ कि भारत मे संविधान तंत्र नियंत्रित हो गया अर्थात तंत्र की तानाशाही हो गई। संविधान के मौलिक सूत्रो का निर्माण समाज शास्त्र का विषय है और व्यावहारिक स्वरूप या भाषा राजनीति शास्त्र का। भारत का संविधान बनाने मे मौलिक सोच भी राजनेताओ की रही और भाषा देने मे भी लगभग अधिवक्ताओ का ही अधिक योगदान रहा। परिणाम हुआ कि भारत की संवैधानिक संरचना वकीलो के लिये स्वर्ग के समान बन गई।

भारतीय संविधान मे कुछ कमियां प्रारंभ से ही दिखती हैं।

1. संविधान को हमेशा स्पष्ट अर्थ प्रदाता होना चाहिये, द्विअर्थी नही। आज स्थिति यह है कि न्यायालय तक संविधान की विपरीत व्याख्या करते देखे जाते है। ऐसा महसूस हो रहा है कि सुप्रीम कोर्ट की फुल बेंच के उपर भी कोई और बेंच होती तो फुल बेंच के अनेक निष्कर्ष बदल सकते थे।
2. परन्तु के बाद मूल अर्थ न बदलकर अपवाद ही आना चाहिये किन्तु भारत के संविधान मे परन्तु के बाद उसके मूल स्वरूप को ही बदल दिया जाता है। भारत मे धर्म जाति, लिंग, का भेद नही होगा। सबको समान अधिकार होगे। किन्तु महिलाओ, अल्प संख्यको, आदिवासियों, पिछडों के लिये विशेष कानून बनाये जा सकते है। स्पष्ट है कि भारत की 90 प्रतिशत आबादी समानता के अधिकारो से वंचित हो जाती है।

3. धर्म जाति भाषा लिंग आदि के भेद समाज के आंतरिक मामले है जबकि परिवार गांव जिले व्यवस्था की इकाइया है। भारतीय संविधान ने परिवार, गांव जिले को तो संविधान से बाहर कर दिया और धर्म जाति भाषा लिंग भेद को संविधान मे घुसा दिया। परिणाम हुआ कि वर्ग समन्वय टूटा और वर्ग विद्वेष वर्ग संघर्ष बढ गया।

4. संविधान बनाने वालो ने तंत्र के दायित्व और स्वैच्छिक कर्तव्य का अंतर नही समझा । तंत्र का दायित्व होता है सुरक्षा और न्याय और स्वैच्छिक कर्तव्य होता है अन्य जन कल्याणकारी कार्यो मे सहायता। संविधान निर्माताओ ने सुरक्षा और न्याय की तुलना मे जन कल्याण को अधिक महत्व दिया। यहां तक कि संविधान मे व्यावहारिकता का भी पूर्णतः अभाव रहा । ऐसी ऐसी आदर्शवादी घोषणाए कर दी गई जो संभव नही थी। उसका परिणाम हुआ अव्यवस्था।

5. संविधान निर्माताओ ने उददेश्यिका मे नासमझी मे समानता शब्द शामिल कर दिया जबकि समानता की जगह स्वतंत्रता शब्द होना चाहिये था। उन्होने समानता का अर्थ भी ठीक ठीक नही समझा। आर्थिक असमानता की तुलना मे राजनैतिक असमानता अधिक घातक होती है। हमारा संविधान आर्थिक सामाजिक असमानता को अधिक महत्व देता है और उसके कारण राजनैतिक असमानता बढती चली जाती है।

6. सिद्धान्त रूप से कमजोरो की सहायता मजबूतो का कर्तब्य होता है, कमजोरो का अधिकार नही। हमारे संविधान निर्माताओ ने इस सहायता को कमजोरो का अधिकार बना दिया। इसके कारण अक्षम और सक्षम के बीच वर्ग विद्वेष वर्ग संघर्ष बढा । मजबूतो को कमजोरो ने सहायक न मानकर शोषक मान लिया।

7. संविधान हमेशा तंत्र को नियंत्रित करता है तथा तंत्र की अधिकतक सीमाएं निश्चित करता है। संविधान कभी तंत्र का मार्ग दर्शक नहीं होता न ही संविधान समाज का मार्गदर्शक होता है। हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान में नीति निर्देशक तत्व तथा व्यक्ति के मौलिक कर्तव्य जैसे अनावश्यक प्रावधान शामिल करके एक ओर तो संविधान को बहुत बडा बना दिया तो दूसरी ओर उसका वास्तविक स्वरूप ही धूमिल कर दिया।

8. सैद्धान्तिक रूप से संविधान तंत्र से उपर होता है। संविधान ही तंत्र को अधिकार देता भी है और तंत्र पर नियंत्रण भी करता है। स्वाभाविक है कि संविधान संशोधन में तंत्र की कोई भूमिका नहीं हो सकती। हमारे संविधान निर्माताओं ने तंत्र को ही संविधान संशोधन के भी अन्तिम अधिकार दे दिये। भारत में कहा जाता है कि संसदीय लोकतंत्र है किन्तु यह बात पूरी तरह गलत है। सच बात यह है कि भारतीय शासन व्यवस्था संसदीय लोकतंत्र न होकर संसदीय तानाशाही है जिसे समाज को धोखा देने के लिये लोकतंत्र कहा जाता है।

किसी संविधान मे यदि एक मौलिक कमी हो तो वह अकेली कमजोरी भी दूरगामी प्रभाव डालती है । किन्तु भारतीय संविधान मे तो सारी कमियां ही विद्यमान हैं और हर साख पर उल्लू बैठा है के अन्जाम के आधार पर परिणाम स्पष्ट दिख रहा है । आज यदि भारत की जनता बढती हुई अव्यवस्था के समाधान के लिये किसी तानाशाह का भी सम्मान करने को तैयार है तो यह दोष जनता का न होकर हमारे संविधान निर्माताओ का ही माना जाना चाहिये। इसलिये मै समझता हूँ कि कही न कही संविधान निर्माताओ की नीयत मे भी खराबी थी तभी उन्होने संविधान संशोधन तक के अधिकार लोक से छीनकर तंत्र को दे दिये तथा लोकतंत्र की परिभाषा पूरी तरह बदल कर लोक नियुक्त तंत्र तक सीमित कर दी।

हम भारतीय संविधान के कुछ परिणामो की व्याख्या करें।

1. भारतीय संविधान का पहला परिणाम यह दिख रहा है कि तंत्र शरीफो, गरीबो, ग्रामीणो, श्रमजीवियों के विरूद्ध धूर्तो, अमीरों, शहरियों, बुद्धिजीवियों का मिला जुला षणयंत्र दिखने लगा है।
2. स्पष्ट दिख रहा है कि संसद एक जेल खाना है जिसमे हमारा भगवान रूपी संविधान कैद है। संविधान एक ओर तो संसद की ढाल बन जाता है तो दूसरी ओर संविधान संसद की मुठ्ठी मे कैद भी है।
3. न्यायपालिका और विधायिका के बीच ऐसी अधिकारो की छीना झपटी दिख रही है जैसे लूट के माल के बटवारे मे दिखती है।
4. लोक और तंत्र के बीच दूरी लगातार बढती जा रही है। लोक हर क्षेत्र मे तंत्र का मुखापेक्षी हो गया है। यहा तक कि तंत्र और लोक के बीच शासक और शासित की भावना तक घर कर गई है।
5. समाज के हर क्षेत्र मे वर्ग समन्वय के स्थान पर वर्ग विद्वेष बढ रहा है।
6. तंत्र का प्रत्येक अंग हर कार्य मे समाज को दोष देने का अभ्यस्त हो गया है। तंत्र का काम सुरक्षा और न्याय है । किन्तु तंत्र इसके लिये भी लोक को ही दोषी कहता हे। यहा तक कि कुछ वर्ष पूर्व भारत के प्रधान मंत्री राष्ट्रपति और विपक्ष के नेता तक ने कहा या कि संविधान दोषी नही है बल्कि उसका ठीक ठीक पालन नही होता। पालन न करने वाले दोषी है। दोषी संविधान है, व्यवस्था है, तंत्र है, और समाज मे हम सुधरेगें जग सुधरेगा जैसा गलत विचार प्रसारित किया जा रहा है ।
7. भारत मे लगातार अव्यवस्था बढती जा रही है । भौतिक विकास तेज गति से हो रहा है और उससे भी अधिक तेज गति से नैतिक पतन हो रहा है।

समस्याओ पर हमने विचार किया किन्तु समाधान भी सोचना होगा। समस्या विश्वव्यापी है किन्तु समाधान की शुरूआत भारत कर सकता है और भारत की शुरूआत हम आप कर सकते है। 1 परिवार और गांव को तत्काल संवैधानिक अधिकार दिये जाने चाहिये। इससे तंत्र का बोझ घटेगा और तंत्र सुरक्षा और न्याय की ओर अधिक सक्रिय हो सकेगा। 2 संविधान को संसद के जेलखाने से मुक्त कराने की पहल होनी चाहिये। संविधान संशोधन के अंतिम अधिकार तंत्रमुक्त किसी इकाई को दिये जाने चाहियें। 3 लोकतंत्र, मूल अधिकार अपराध, समानता आदि की वर्तमान भ्रम पूर्ण मान्यताओ को चुनौती देकर वास्तविक अर्थ स्थापित करने का प्रयास करना चाहिये। 4 संविधान कानून आदि शब्दो की भी स्पष्ट परिभाषा बननी चाहिये। भले ही अब तक दुनियां मे न बनी हो। संसदीय लोकतंत्र को बदल कर सहभागी लोकतंत्र की दिशा मे बढना चाहिये। 5 सांसद को दल प्रतिनिधि की जगह जन प्रतिनिधि होना चाहिये। संसदीय लोकतंत्र को बदलकर निर्दलीय व्यवस्था की ओर जाना चाहिये। जिस तरह आज संसद असंसदीय दृष्य प्रस्तुत करती है वह हमारे लिये शर्म और चिन्ता का विषय है। 6 भारतीय संविधान मे कुछ मौलिक सुधार की आवश्यकता है। ऐसे सुधार भी होने चाहिये।

मुझे विश्वास है कि भारतीय संविधान की कमजोरियां को दूर करने की हमारी कोशिश विश्वव्यापी परिवर्तन की दिशा मे ले जा सकती है हमे इस दिशा मे विचार मंथन करना चाहिये।

स्पष्ट है कि भारत की वर्तमान अव्यवस्था के लिये भारतीय संविधान ही सर्वाधिक दोषी है। संविधान में संशोधन या बदलाव के दुनियां में चार मार्ग ही उपलब्ध हैं

1. जयप्रकाश आंदोलन के अनुसार चुनावों के माध्यम से संसद में दो तिहाई बहुमत लाकर संविधान संशोधित कर दिया जावे।
2. अन्ना आंदोलन के अनुसार जनता का इतना व्यापक दबाव दिखने लगे कि वर्तमान संसद ही डरकर संविधान को संशोधित करके उसे जनता के लिये स्वतंत्र कर दे।
3. मिश्र टयूनीशिया के समान एकाएक जन विस्फोट हो और उस जन विस्फोट में संविधान पूरी तरह बदल जावे।
4. लीबिया के समान गृह युद्ध हों और मरेंगे मारेंगे के आधार पर संविधान बदल दिया जावे।

भारत में तानाशाही न होकर विकृत लोकतंत्र है इसलिये चौथे मार्ग पर सोचने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। तीसरा मार्ग स्व निर्मित है। उसमें हमारी कोई प्रत्यक्ष भूमिका नहीं हो सकती। हम तो सिर्फ प्रतीक्षा कर सकते हैं। हमारे पास पहले और दूसरे मार्ग ही उपलब्ध हैं किन्तु जे पी और अन्ना आंदोलन से निकले परिणामों ने समाज की हिम्मत खत्म कर दी है इसलिये कोई आंदोलन संभव नहीं दिखता। किन्तु निराशा की जगह कुछ न कुछ करना तो होगा ही और लोकतंत्र के दोनो मार्गो में जन जागरण की ही मुख्य भूमिका है। इसलिये अब समय आ गया है कि देश में राइट टू कंस्टीटयूशन अर्थात संविधान का अधिकार के लिये एक सूत्रीय जन जागरण हो। यदि भारत में यह मार्ग सफल हो सका तो सारे विश्व के लिये यह मार्ग दर्शक हो सकेगा और हम विश्व संविधान की दिशा में बढ सकेगे।

प्रश्नोत्तर ''राइट टू कंस्टीटयूशन''

1 प्रश्न–तंत्र से आपका क्या आशय है?

उत्तर–कार्यपालिका विधायिका तथा न्यायापालिका के समन्वित स्वरूप को तंत्र कहते है।

दुनियां के सभी व्यक्तियों को मिलाकर समाज होता है इसलिये आदर्श व्यवस्था में दुनियां का एक संविधान होना चाहिये। जिसके निर्माण में प्रत्येक व्यक्ति की समान भूमिका हो।

2 प्रश्न– यह कैसे संभव है कि दुनियां के सब लोग एक साथ मिलकर संविधान बना सके?

उत्तर–दुनियां के सब लोग मतदान द्वारा किसी संविधान सभा का निर्माण कर सकते है जो संविधान का प्रारूप बना दे। यदि सब लोग चाहे तो उस संविधान सभा को ही स्वीकृति का भी अधिकार दे सकते है।

3 प्रश्न–आपके विचार में चीन में अभी कौन सी प्रणाली है?

उत्तर–जिस देश में संविधान संशोधन में प्रत्येक नागरिक की भूमिका न हो उसे तानाशाही माना जाता है। चीन में लोकतंत्र नहीं है बल्कि तानाशाही है। लोकतंत्र का अर्थ होना चाहिये लोक नियंत्रित तंत्र, भारतीय संविधान निर्माताओं ने इसे बदल कर इसे लोक नियुक्त तंत्र तक सीमित कर दिया।

4 प्रश्न–संविधान निर्माताओं ऐसा कब किया?

उत्तर–गांधी के मरने के बाद संविधान निर्माताओं ने परिभाषा बदल दी।

आदर्श स्थिति में तंत्र प्रबंधक होता है और लोक मालिक। वर्तमान भारत में तंत्र शासक बन गया है और लोक शाषित।

5 प्रश्न–क्या दुनियां के किसी देश में तंत्र को प्रबंधक माना जाता है?

उत्तर–मेरी जानकारी के अनुसार अब तक किसी देश में ऐसा नहीं है किन्तु ऐसा होना चाहिये। दुनियां अधिकांश देशों में ब्रिटेन की नकल की गयी है इसलिये सब जगह यही धारणा बनी हुयी है।

6 प्रश्न– संविधान की यह परिभाषा कहा से ली गयी है?

उत्तर–रामानुजगंज के जंगलो में बैठकर जो विचार मंथन हुआ उस विचार मंथन से संविधान की यह परिभाषा निकलकर आयी। अबतक दुनियां में संविधान की कोई मान्य परिभाषा नहीं बनी हुई है। उपरोक्त परिभाषा सबसे उपयुक्त है।

7 प्रश्न–संसद संविधान संशोधन करती है और न्यायालय उसकी समीक्षा करता है। संसद में भी लोकसभा और राज्य सभा अलग अलग विचार करते है फिर इसे तानाशाही कैसे माना जाये।

उत्तर–न्यायालय लोकसभा राज्यसभा सभी तंत्र के भाग है लोक के नहीं। इसलिये तंत्र की तानाशाही कहा गया है संसद की नहीं। जिस तंत्र को संविधान अधिकार देता है वही तंत्र संविधान में संशोधन कैसे कर सकता है।

8 प्रश्न– आपने लिखा है कमजोरों की सहायता मजबूतों का कर्तव्य होता है कमजोरों का अधिकार नहीं। यदि मजबूत लोग कमजोरो की मदद न करे तो सरकार को क्या करना चाहिये?

उत्तर–सरकार कमजोरो की सहायता कर सकती है किन्तु कमजोरो को विशेष अधिकार नहीं दे सकती है। अधिकार सबके समान होते है किसी के अधिकार कम ज्यादा नही किये जा सकते।

9 प्रश्न– कुछ लोग सम्पत्ति की अधिकतम सीमा बनाने की बात करते है इसमें आपका क्या मत है?

उत्तर–सम्पत्ति व्यक्ति का मौलिक अधिकार है उसकी कोई सीमा नहीं बनाई जा सकती। कुछ लोग बुरी नीयत से सामाजिक आर्थिक असमानता की बहुत चर्चा करते है किन्तु राजनैतिक असमानता की कोई चर्चा नहीं होती।

10 प्रश्न–समाचार आया है कि दुनियां की निन्यानवे प्रतिशत आबादी के पास जितनी सम्पत्ति है उससे अधिक सम्पत्ति सिर्फ एक प्रतिशत लोगो के पास है। इसे क्या आप उचित समझते है?

उत्तर–जिन लोगो के पास सम्पत्ति है उन्हें कानून बनाने अथवा सेना और पुलिस का अधिकार नहीं है किन्तु दुनियां के सौ दो सौ लोग ही ऐसे है जो पांच अरब लोगो के विषय में अंतिम निर्णय का अधिकार रखते है। यह गुलामी किसी को नहीं दिखती सम्पत्ति की असमानता की चर्चा बहुत होती है और विशेषकर वे लोग अधिक चिंता करते है जो समाज को गुलाम बनाकर रखते है। उपरोक्त समाचार भी किसी गुलाम बनाने वाले नेता की तरफ से ही आया होगा। जो व्यक्ति राजनीति में रूचि रखता है और आर्थिक सामाजिक असमानता की चिंता करता है उसे समाज विरोधी तत्व मान लेना चाहिये।

11 प्रश्न– आप वर्ग समन्वय के पक्षधर है। क्या वर्ग समन्वय के नाम पर बढती हुयी असमानता को स्वीकार किया जा सकता है?

उत्तर– असमानता प्राकृतिक है। दुनियां के कोई भी दो व्यक्ति की योग्यता और क्षमता समान नहीं होती। हमारा कर्तव्य है कि हम असमानता को कम करने का प्रयत्न करे किन्तु वर्ग विद्वेष समाज में अधिक नुकसान करता है। वर्ग समन्वय की कीमत पर कोई असमानता दूर नहीं की जा सकती।

12 प्रश्न– आप चाहते है कि भारतीय संविधान में परिवार और गांव को तत्काल संवैधानिक अधिकार दिये जाने चाहिये। क्या वर्तमान समय में परिवार और गांव को संवैधानिक अधिकार नहीं है?

उत्तर–परिवार को तो कभी संवैधानिक अधिकार दिये ही नहीं गये। राजीव गांधी के कार्यकाल में गांव को संविधान संशोधन करके कार्यपालिक अधिकार दिये गये। लेकिन विधायी अधिकार नहीं दिये गये। कार्यपालिक अधिकार भी आधे अधूरे दिये गये। संविधान द्वारा उन्तीस अधिकार गांव को देने की घोषणा हुयी किन्तु पच्चीस वर्ष बीतने के बाद भी आज तक एक भी अधिकार गांव को नहीं दिया गया।

13 प्रश्न– क्या संविधान को भगवान का दर्जो दिया जा सकता है?

उत्तर–संविधान सर्वोच्च होता है सरकार के भी उपर पुराने जमाने में राजा को भगवान का रूप देते थे अब संविधान ही राजा है इसलिये भगवान मानने मे कोई हर्ज नहीं है। संविधान समाज से उपर नही है किन्तु समाज के सभी व्यक्तियों से संविधान उपर है।

14 प्रश्न–सहभागी लोकतंत्र से आपका क्या आशय है?

उत्तर–परिवार गांव जिले अपनी अपनी इकाई में जितना काम संभाल सकते है वे अधिकार और दायित्व उन्हें दे दिये जाये। कुछ थोडे से विभाग केन्द्र सरकार रखे मेरे विचार से केन्द्र सरकार को सेना पुलिस वित विदेश न्याय अपने पास रखकर बाकी सारे काम सामाजिक इकाईयों पर छोड देने चाहिये। इसके लिये परिवार गांव, जिला, प्रदेश और केन्द्र तक की सामाजिक इकाईयां बन सकती है। केन्द्र सरकार और केन्द्रिय समाज को अलग अलग होना चाहिये।

15 प्रश्न– आपने लिखा है कि भारत में भौतिक विकास तेज गति से हो रहा है और नैतिक पतन भी उससे तेज गति से हो रहा है।यह कार्य तो सारी दुनियां में हो रहा है फिर भारत की ही चिंता क्यों?

उत्तर–भारत प्राचीन समय से ही दुनियां का मार्गदर्शन करता रहा है। गुलामी काल में यह परिपाटी टूट गयी थी। अब पुनः भारत को इस विषय में पहल करनी चाहिये।

मंथन क्रमांक–122 ''गांधी मार्क्स ओर अम्बेडकर''

गांधी मार्क्स और अम्बेडकर की तुलना कठिन होते हुये भी बहुत प्रासंगिक है क्योंकि तीनों के लक्ष्य और कार्यप्रणाली अलग–अलग होते हुये भी वर्तमान भारत की राजनैतिक सामाजिक व्यवस्था पर तीनों महापुरूषों का व्यापक प्रभाव है।

गांधी की तुलना मे मार्क्स और अम्बेडकर कहीं नही ठहरते। तुलना के लिये आवश्यक है कि तीनो के लक्ष्य मे कुछ समानता हो भले ही मार्ग भिन्न ही क्यो न हो। यहॉ तो तीनो के लक्ष्य भी अलग अलग हैं और मार्ग भी । गांधी सामाजिक स्वतंत्रता को लक्ष्य बनाकर चल रहे थे । गांधी के लक्ष्य मे कही भी सत्ता संघर्ष नहीं था। वे तो सत्ता मुक्ति के प्रयत्नों तक सीमित थे। मार्क्स का लक्ष्य सत्ता परिवर्तन था । गांधी का लक्ष्य अकेन्द्रीयकरण था तो मार्क्स का केन्द्रीयकरण। अम्बेडकर का लक्ष्य तो और भी सीमित था। मार्क्स सत्ता को समस्याओं का समाधान बताते थे किन्तु स्वयं सत्ता संघर्ष मे नहीं थे। अम्बेडकर स्वयं प्रारंभ से ही सत्ता की तिकडम करते रहे। मार्क्स पूंजीवाद को हटाकर धनहीनों की सत्ता चाहते थे तो अम्बेडकर समाज व्यवस्था का लाभ उठा रहे सवर्णो के लाभ मे अवर्ण बुद्धिजीवियों का हिस्सा मात्र चाहते थे। गांधी किसी भी प्रकार के वर्ग संघर्ष के विरूद्ध थे तो मार्क्स गरीब अमीर के बीच तथा अम्बेडकर सवर्ण अवर्ण के बीच संघर्ष के पक्षधर थे। गांधी वर्ग संघर्ष के परिणाम मे समाज टूटन विषरूपी परिणाम देखकर चिन्तित थे तो मार्क्स और अम्बेडकर वर्ग संघर्ष के परिणाम स्वरूप समाज टूटन को सत्ता रूपी मक्खन समझकर प्रसन्न होते थे। गांधी अधिकतम अहिंसा के पक्षधर थे तो मार्क्स अधिकतम हिंसा के और अम्बेडकर को हिंसा अहिंसा से कोई परहेज नही रहा।

मार्क्स का एक नारा था कि शासन मुक्त व्यवस्था। मार्क्स मानते थे कि ईश्वर का भय समाज में कम होने के कारण राज्य के अदृश्य भय का बढना आवश्यक है। मार्क्स मानते थे कि राज्य धीरे–धीरे अदृश्य होकर अस्तित्वहीन हो जायेगा तथा समाज अस्तित्वहीन राज्य के भय से स्वाभाविक रूप से चलता रहेगा। मार्क्स की यह धारणा कालान्तर में घातक सिद्ध हुई। मार्क्स के नाम पर स्थापित राज्य ने ईश्वर और समाज के भय को तो कम किया और अपना भय बढा दिया किन्तु स्वयं को अस्तित्व हीन होने के पूरी तरह विपरीत स्थायी स्वरूप देना शुरू कर दिया।

परिणाम स्पष्ट था कि मार्क्स के कथनानुसार चलने वालो को पूरा पूरा सत्ता सुख मिला जिसमे कहीं भी समाज के लिये गुलामी के अतिरिक्त कुछ और नही था तो अम्बेडकर जी के मार्ग पर सत्ता की दिशा चलने वालों को लूट के माल मे हिस्सा मिलना शुरू हो गया। समाज को न मार्क्स की दिशा मे गुलामी से राहत मिली न अम्बेडकर के मार्ग से श्रमजीवी अवर्णो को। गांधी की चर्चा इसलिये संभव नहीं क्योकि गांधी तो स्वतंत्रता के पहले पडाव पर ही मार दिये गये। सत्ता के दो दावेदार गुटो मे से एक ने गांधी के विरूद्ध ऐसा वातावरण बनाया कि गांधी की शारीरिक हत्या हो गई तो दूसरे ने गांधी के वारिस बनकर ऐसा वातावरण बनाया कि गांधी विचारों की हत्या हो गई।

गांधी का प्रयत्न था कि दुनियां के सभी शरीफ लोग अपराधियों के विरूद्ध एक जुट हो जावें। गांधी हृदय परिवर्तन पर ज्यादा जोर देते थे। मार्क्स का नारा था कि दुनियां के सभी मजदूरों एक हो जाओ। इसमें वर्ग संघर्ष को आधार बनाया गया। अम्बेडकर भी भारत के सभी अवर्णो को सवर्णो के विरूद्ध एक जुट होकर संघर्ष का नारा देते रहे।

यदि हम भारत का आकलन करें तो यहॉ आपको मार्क्स की लाइन पर चलने वाले भी बडी संख्या मे मिल जायगें क्योकि इस लाइन पर चलने मे कहीं न कहीं सत्ता की उम्मीद है। अम्बेडकर की लाइन पर चलने मे भी लाभ ही लाभ है क्योकि वहां भी सत्ता मे हिस्सेदारी की पूरी व्यवस्था अम्बेडकर जी सदा सदा के लिये कर गये है। बेचारे गांधी के मार्ग पर क्या मिलने वाला है? क्यों कोई गांधी मार्ग पर चले? आज भारत मे बेचारे गांधी का हाल यह है कि यदि किसी से कहा जाय कि तुम्हारे बेटे के रूप मे गांधी का जन्म होने वाला है तो वह चाहेगा कि गांधी के रूप वाला बेटा पडोसी के घर चला जाये। उसे तो नेहरू, बिडला या अम्बेडकर सरीखे बेटे से ही काम चल जायगा। गांधी की लाइन पर चलने वाले को न तो कोई व्यक्तिगत लाभ है न ही पारिवारिक। इस लाइन पर चलकर सिर्फ सामाजिक लाभ ही संभव है जिसमे चलने वालो की रूचि नगण्य है। दूसरी ओर मार्क्स या अम्बेडकर की लाइन पर चलने वाले को व्यक्तिगत और पारिवारिक लाभ भरपूर है। इतना ज्यादा कि वह पूरे समाज के लाभ को भी अपने घर मे डाल रखने की शक्ति पा जाता है। बताइये कि आज के भौतिक युग मे कोई गांधी मार्ग पर क्यो चले?

यदि अम्बेडकर या मार्क्स मे आंशिक रूप से भी सामाजिक भाव होता तो वे श्रम, बुद्धि और धन के बीच श्रम की मांग और मूल्य बढने की बात करते जिससे आर्थिक सामाजिक विषमता कम होती । गांधी ने लगातार श्रम और बुद्धि के बीच दूरी घटाने की कोशिश की । अम्बेडकर को तो श्रम से कोई मतलब था ही नहीं। न अच्छा न बुरा। अम्बेडकर तो सिर्फ सामाजिक असमानता का लाभ उठानें तक ही पर्याप्त थे। किन्तु मार्क्स को आधार बनाकर बढने वालों ने श्रम को धोखा देने के लिये मानसिक श्रम नामक एक नया शब्द बना लिया जो पूरे पूरे शारीरिक श्रम का हिस्सा निगल गया। बुद्धि जीवियों ने शारीरिक श्रम शोषण के ऐसे ऐसे तरीके खोज लिये कि श्रम और बुद्धि के बीच दूरी लगातार बढती चली गई। यदि गांधी के अनुसार मशीन और शारीरिक श्रम के बीच कोई मानवीय संतुलन रखा गया होता तो आज जैसी अराजकता नहीं होती। किन्तु मार्क्सवादियों की निगाहें श्रम पर थी और निशाना बुद्धि को लाभ पहुंचाने का। भारत में समाजवादी लोकतंत्र नामक आंशिक साम्यवाद ही आ पाया किन्तु यहॉ भी श्रम और बुद्धि के बीच लगातार बढता फर्क स्पष्ट है। यदि श्रम की मांग और महत्व बढ जाता तो जातीय आरक्षण की जरूरत ही नही पडती। किन्तु भारत मे सत्ता लोलुप त्रिगुट श्रम मूल्य वृद्धि के प्रयास से ही आतंकित थे। नेहरू के नेतृत्व का कांग्रेसी गुट बुद्धिजीवी पूंजीपतियों को अधिकाधिक सुविधा देकर उनके वोट लेने का प्रयास करता रहा तो साम्यवादी श्रम प्रधान लोगों को बहकाकर उन्हे पूंजीवाद के विरूद्ध नारा लगवाने का औजार मानते रहे और अम्बेडकर वादियों की खास समस्या रही कि यदि श्रम और बुद्धि के बीच की दूरी घट गई तो जातीय आरक्षण महत्वहीन हो जायगा। तीनो के अलग अलग स्वार्थ थे और इस स्वार्थ का उजागर करने वाला कोई था नहीं। संघ परिवार से कुछ उम्मीद की जा सकती थी किन्तु उसे भी हिन्दू मुसलमान के अतिरिक्त किसी समस्या से कोई मतलब नहीं था।

गांधी कट्टर हिन्दू थे। वे मानते थे कि हिन्दू धर्म की वाह्य मान्यताऍ अन्य सभी धर्मो की अपेक्षा अधिक मानवीय है। मार्क्स अपना स्वयं का धर्म चलाना चाहते थे। उनके अनुसार धर्म समाज मे होता है। यदि राज्य ही समाज बनकर समाज के सभी काम करने लगे तो किसी धर्म की जरूरत ही क्या है। अम्बेडकर को हिन्दू धर्म से विशेष द्वेष था। वे बचपन से ही हिन्दू धर्म छोडकर उससे प्रत्यक्ष टकराव चाहते थे किन्तु गांधी जी ने कडाई से उन्हे रोक दिया। अम्बेडकर बहुत चालाक थे। उन्होने समझा कि कुछ वर्ष हिन्दू ही रहकर उसकी जडो मे मठ्ठा डालने का काम क्यो न करें? जहॉ लोहिया, जयप्रकाश, नेहरू, पटेल आर्थिक विषमता को दूर करना अपनी प्राथमिकता घोषित कर रहे थे वहीं अम्बेडकर ने हिन्दू कोड बिल के पीछे अपनी सारी शक्ति लगा दी। वे मुसलमान होना चाहते थे किन्तु मुस्लिम महिलाओं को उन्होंने अपने कोड बिल के सुधारवादी कदम से बाहर रखा। रोकने वाला कोई था नही। गांधी थे ही नही, नेहरू जी अंबेडकर से डरते थे। गांधी हत्या के बाद संघ अविश्वसनीय हो चुका था। अम्बेडकर के इस प्रयत्न को कौन रोकता? हिन्दू धर्म के तथाकथित अगुवा सवर्ण स्वयं अवर्ण शोषण के कलंक से मुंह छिपा रहे थे। अम्बेडकर जी हिन्दू कोड बिल बनवाने मे सफल रहे। मुझे आश्चर्य होता है कि गांधी के कट्टर हिन्दू होते हुए भी हिन्दुत्व के किसी राजनैतिक स्वार्थ पूर्ण प्रचार से प्रभावित होकर किसी मूर्ख हिन्दू ने ही गांधी की हत्या कर दी। मै समझ नही पाता कि हिन्दुत्व का शत्रु कौन? अम्बेडकर, मार्क्स अथवा वह स्वार्थ पूर्ण प्रचार जिसने सत्ता के फेर मे पडकर गांधी को उसमे बाधक मान लिया। कुछ ही वर्ष बाद बात उजागर हो गई जब ऐसे तत्वो ने हिन्दू संगठन के नाम पर अपना अलग राजनैतिक दल बना लिया। मै अब भी मानता हूँ कि हिन्दू धर्म मे आंतरिक बुराइयां थी और अब भी है किन्तु अन्य धर्मो के साथ संबंध मे हिन्दू धर्म के मुकाबले कोई नही। गांधी हिन्दू धर्म की आंतरिक बुराइयों को दूर करना चाहते थे और अम्बेडकर उसका लाभ उठाना चाहते थे यही तो है इनका तुलनात्मक विश्लेषण।

वर्तमान समय में तीनों ही महापुरूष जीवित नहीं हैं किन्तु तीनों की छाया आज भी भारतीय समाज व्यवस्था को प्रभावित कर रही है। गांधी टोपी गांधी की खादी और गांधी का झंडा हाथ में लेकर गांधीवादी राजनेताओं ने सारे देश को आर्थिक तथा राजनैतिक रूप से लूट लिया। आज आपको भारत में ऐसे धूर्त राजनेता भी मिल जायेगे जो एक ओर तो अपने नाम के साथ गांधी उपनाम जोडते हैं तो

दूसरी ओर राजनैतिक सत्ता की दौड में भी शामिल रहते हैं। असली गांधी ने अपने कार्यकाल में मिलती हुई सत्ता को त्याग दिया था तो नकली नामधारी गांधी न मिलती हुई सत्ता के पीछे भी दौड़े चले जा रहे हैं।

गांधी व्यक्ति स्वातंत्र के पक्षधर थे तो गांधीवादियों ने सारी सत्ता अपने पास समेट कर समाज को गुलाम बना लिया। गांधी न्यूनतम मशीनीकरण के पक्षधर थे तो गांधीवादियों ने डीजल, पेट्रोल, बिजली को अधिकतम सस्ता कर दिया। गांधी वर्ग समन्वय के पक्षधर थे तो गांधीवादियों ने वर्ग विद्वेष, वर्ग संघर्ष को ही सत्ता का आधार बना लिया। गांधी के अराजनैतिक उत्तराधिकारियों से समाज को कुछ उम्मीद थी किन्तु वे भी राजनैतिक गांधीवादियों के ऐसे प्रभाव में आये कि उन्होंने ग्राम स्वराज्य की परिभाषा ही बदल दी। गांधी स्वराज ग्राम के पक्षधर थे और ग्राम स्वावलम्बन को स्वायत्ता का परिणाम मानते थे तो गांधीवादी ग्राम स्वावलम्बन को ही मुख्य मानने लगे। विनोबा के नेतृत्व में गांधीवादी आदर्श ग्राम बनाते रहे तो सत्ताधीश गांधीवादी सत्ता की सारी माल मलाई खाते रहे। गांधीवादियों ने अपने पूरे कार्यकाल में संघ परिवार का विरोध करने के पीछे अपनी इतनी शक्ति लगाई कि अपना अस्तित्व ही समाप्त कर दिया। दूसरी ओर संघ परिवार ने भी गांधी को बदनाम करने के पीछे इतनी ज्यादा ताकत लगाई कि वह कभी हिन्दुओं का विश्वास अर्जित नहीं कर सका। भारत का हर हिन्दू समझता है कि यदि कोई व्यक्ति गांधी हत्या का समर्थक है तो वह व्यक्ति हिन्दुत्व को बिल्कुल नहीं समझता।

मार्क्स के नाम पर भारत में साम्यवाद आया। सत्ता प्राप्ति ही उसका एक मात्र लक्ष्य था। वर्ग विद्वेष, वर्ग संघर्ष को साम्यवाद ने अपना मुख्य आधार बनाया। नेहरू, पटेल, अम्बेडकर आदि से भी साम्यवादियों को फूट डालो राजकरो की नीतियों का भरपूर समर्थन मिला। साम्यवादियों ने लोकतंत्र की अपेक्षा हिंसा पर अधिक विश्वास किया। सम्पूर्ण भारत में बंगाल, केरल और त्रिपुरा में सबसे अधिक हिंसा को सत्ता परिवर्तन का आधार मानने का प्रचलन अब तक है। साम्यवाद का ही अतिवादी स्वरूप नक्सलवाद के रूप में सामने आया जिसने पूरे भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था को छिन्न भिन्न करने में कोई कसर नहीं छोडी। साम्यवाद ने परिवार व्यवस्था और समाज व्यवस्था को निरंतर कमजोर किया। साम्यवाद ने हिन्दुत्व की अवधारणा को ही अपने लक्ष्य में बाधक माना और जब जहॉ जरूरत पडी इस्लाम से समझौता कर लिया। साम्यवाद गरीब अमीर के बीच वर्ग संघर्ष के लिये आवश्यक समझता है कि दोनो के बीच दूरी लगातार बढती रहे। साम्यवाद अच्छी तरह जानता है कि कृत्रिम उर्जा श्रम शोषक है और श्रम मूल्य वृद्धि के लिये कृत्रिम उर्जा मूल्य वृद्धि आवश्यक है फिर भी वह हमेशा कृत्रिम उर्जा मूल्य वृद्धि के खिलाफ सबसे आगे रहता है क्योंकि ऐसा होते ही उसका वर्ग संघर्ष का आधार टूट जायेगा। साम्यवादी कृत्रिम उर्जा पर टैक्स का तो विरोध करते है किन्तु गरीब, ग्रामीण, श्रमजीवी, कृषि उत्पादन पर लगने वाले करों का विरोध नहीं करते। उन्होंने बंगाल, केरल में भी ये कर नहीं हटाये।

अम्बेडकर जी की तो शुरू से ही नीयत खराब थी। वे सिर्फ सत्ता लोलुप थे। परिणामस्वरूप उनके वारिस भी उसी राह पर चलते रहे। भारत में एस.सी, एस.टी की कुल संख्या यदि तीस करोड मान लें तो इनमें से पंचान्नवे प्रतिशत आज भी श्रमजीवी हैं। दो तीन प्रतिशत बुद्धिजीवी अवर्णो ने अपने अवर्ण श्रमजीवियों का लगातार शोषण किया। इन मुठठी भर बुद्धिजीवी अवर्णो ने अम्बेडकर के नाम पर सम्पूर्ण भारत को ब्लैक मेल किया है। सारा देश जानता है कि वर्तमान संविधान भारत की सारी समस्याओं की जड है। जब तक इस संविधान में व्यापक संशोधन नहीं होते तब तक कोई सुधार संभव नहीं। किन्तु संविधान की बात उठते ही ये मुठठी भर अम्बेडकर वादी ऐसा आसमान सर पर उठा लेते है कि कोई सही बात कह ही नहीं पाता। इस संविधान का लाभ उठा रहे सभी बुद्धिजीवी राजनेता चाहे वह सवर्ण हो या अवर्ण, अम्बेडकर जी और उनके संविधान को भगवान की तरह स्थापित करते है। वे भूल जाते है कि भविष्य के इतिहास में भीमराव अम्बेडकर खलनायक सिद्ध होने वाले हैं।

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते है कि गांधी की नीतियां और नीयत दोनो ठीक थी, मार्क्स की नीयत ठीक थी नीतियां गलत थी और अम्बेडकर की नीतियां और नीयत दोनो गलत थी। गांधीवादियों ने गांधी की नीतियों के विपरीत आचरण करके, मार्क्वादियों ने मार्क्स की नीतियों में संशोधन करके तथा अम्बेडकरवादियों ने अंबडेकर की नीतियों पर अक्षरशः आचरण करके भारत की सामाजिक, राजनैतिक व्यवस्था को गंभीर श्रति पहुंचाई है।

मेरे विचार से भारत की वर्तमान अव्यवस्था का एक ही समाधान है गांधी। हम मार्क्स और अम्बेडकर के चक्रव्यूह से भारत को निकालकर गांधी मार्ग पर चलने हेतु प्रेरित करें।

सामयिकी

संघ चक्रव्यूह मेंः–

स्वतंत्रता के बाद पहली बार संघ परिवार निर्णय नहीं कर पा रहा है कि उसे क्या करना चाहिये। संघ हमेशा राजनीति से बाहर दिखकर राजनीति पर पूरा दबाव बनाता रहा है। संघ ने अटल जी को हमेशा संकट में डालकर रखा, और मोदी के साथ भी संघ उसी दिशा में टेढ़ी मेढ़ी चालें चलने लगा है। करीब डेढ़ वर्ष पहले जब मोदी का ग्राफ सर्वोच्च स्तर पर था तब संघ ने मोदी की राह को असंतुलित करने के लिये सुब्रह्मण्यम स्वामी तथा योगी आदित्य नाथ का उपयोग शुरू किया। संघ ने उस समय मोदी की आर्थिक

नीतियों में भी दबाव डालकर कुछ संशोधन कराया। संघ लगातार योगी या गडकरी की पीठ पर भी हाथ रखता रहा है। चुनाव में पराजय का दोष भी मोदी पर डालने का प्रयास हुआ।

वर्तमान स्थिति यह है कि भारतीय जनता पार्टी में अब मोदी का भय बहुत कम हो गया है। अनुशासन खत्म हो रहा है उसका दोष भी मोदी पर ही डाला जा रहा है। मोदी चाहते हैं कि अगला चुनाव विकास, हिन्दुत्व तथा गांधी परिवार के अनेक भ्रष्टाचारों को मिलाकर लडा जाये लेकिन संघ का दबाव है कि हिन्दुत्व और विशेषकर मंदिर मुद्दे को अकेला आधार बनाया जाये। नरेन्द्र मोदी अपनी ईमानदारी और कार्यकुशलता के आधार पर स्वयं निर्णायक मानकर राजनैतिकनिर्णय लेना चाहते है तो संघ उन्हें अपने आधार पर निर्णय मानने के लिये बाध्य करता है। संघ परिवार अपने को निर्णायक मानता है और नरेन्द्र मोदी अपने को। यही कारण है कि लगभग डेढ़ वर्ष पहले पूरे देश में मोदी एक मात्र नेता के रूप में स्थापित हो गये थे तब संघ परिवार ने विभिन्न तरीकों से उनके पंख कतरने शुरू किये। गडकरी को सामने करना भी उसी योजना का एक भाग है। मनमोहन सिंह के सोनिया द्वारा पंख कतरते कतरते कांग्रेस साफ हो गयी थी और उसके पूर्व अटल जी का भी यही हाल हुआ था। कहीं संघ द्वारा वही प्रयोग दोहराते दोहराते मोदी का भी वही हाल न हो जाये और न चाहते हुये भी कोई नया इतिहास बन जाये।

मैं यह महसूस करता हूँ, कि मोदी ने राजनीति के प्रत्येक क्षेत्र में बहुत अच्छे काम किये है। भ्रष्टाचार के मामले में सोनिया, राहुल की तुलना में ईमानदारी का बहुत अच्छा कीर्तिमान बना चुके है। विकास के मामले में भी पिछली सरकारों की तुलना में मोदी का कार्यकाल बहुत अच्छा रहा है। यदि सुरक्षा का ऑकलन करे तो नक्सलवाद और कश्मीर में नियंत्रण बढा है। विदेश नीति भी बहुत सफल रही है। हिन्दुत्व के मामले में भी मुस्लिम साम्प्रदायिकता पर अंकुश लगा है। इन सारी उपलब्धियों के बाद भी संघ परिवार मोदी पर दबाव डालकर अपनी बात मनवाने का प्रयास करता रहा है जिसे मोदी ने अस्वीकार कर दिया है। स्पष्ट है कि संघ परिवार को नाराज करने का बहुत बडा जोखिम मोदी ने उठा लिया है, किन्तु संघ परिवार भी समझ नही पा रहा है कि वह किधर जाये। राहुल और पूरा विपक्ष अल्पसंख्यक तुष्टिकरण की ओर बढ रहा है। मध्य प्रदेश और राजस्थान की नवनिर्वाचित सरकारो ने संघ को खुली चुनौती दी है। स्पष्ट है कि अब तक संघ राजनीति के दोनो हाथों में लडडू रखता था किन्तु इस चुनाव में मोदी ने भी संघ को झटका दे दिया है और विपक्ष भी संघ विरोध से पीछे हटने को तैयार नहीं है। नरेन्द्र मोदी ने मंदिर मामले में अपनी नीति स्पष्ट करके बहुत अच्छा और हिम्मत का काम किया है। इससे हो सकता है कि चुनावों मे नुकसान भी हो जाये किन्तु संघ की दबाव डालने की क्षमता अवश्य ही प्रभावित होगी। मैं इसे एक अच्छा लक्षण मान रहा हूँ।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न–1 आपके विचार से अगले आम चुनाव में नरेन्द्र मोदी का भविष्य कैसा है?

उत्तर– मैं कोई राजनैतिक भविष्यवाणी नहीं कर सकता, अभी कई माह बचे है, और परिस्थितियां अनिश्चित हैं। पिछले लोकसभा चुनाव के पूर्व मैं मनमोहन सिंह जी का प्रशंसक था, किन्तु वे इस दौर से ही बाहर कर दिये गये हैं। इस लोकसभा चुनाव में, मैं नरेन्द्र मोदी के कार्यों का प्रशंसक हूj, किन्तु संघ और योगी सरकार ने पूरी तरह मुस्लिम आबादी को नरेन्द्र मोदी के खिलाफ एकजुट कर दिया है। अल्पसंख्यक आबादी पूरा जोर लगाकर मोदी सरकार को हराने का प्रयत्न करेगी। दूसरी ओर मोदी जी द्वारा राम मंदिर के संबंध में दिया गया बयान बहुत से हिन्दुओं को भी मोदी जी के विरूद्ध कर देगा। ऐसी परिस्थिति में परिणाम कुछ भी हो सकता है।

सामयिकी

सवर्ण आरक्षण की एक समीक्षा

मैं शुरू से ही किसी भी प्रकार के आरक्षण को श्रम शोषण का सिद्धान्त मानता हूँ। बुद्धिजीवी समय–समय पर श्रम शोषण के लिये विभिन्न तरीके खोजते रहते है। जातीय आरक्षण भी ऐसा ही एक तरीका रहा है जो दो–तीन प्रतिशत अवर्ण बुद्धिजीवियों का हथियार बना रहा। मेरे विचार से किसी भी प्रकार का आरक्षण समाप्त होना चाहिये किन्तु वर्तमान भारत की राजनैतिक व्यवस्था पर बुद्धिजीवियों का एकाधिकार है इसलिये आरक्षण को सीधा समाप्त करना कठिन कार्य है।

जब कोई फोड़ा दबना संभव नहीं रहता तब उसे पकाकर फूट जानें की प्रतिक्षा की जाती है। आरक्षण रूपी फोड़ा भी समाप्त करना असम्भव हो गया इसलिये अब उसे बढ़ाकर उसे समाप्त करने का तरीका खोजा गया है। सवर्णो को आर्थिक आधार पर दस प्रतिशत आरक्षण दिया जाना उस मार्ग को प्रशस्त करता है। अब तक नब्बे प्रतिशत श्रमजीवी अवर्णो का हकमार कर दो–चार प्रतिशत बुद्धिजीवी अवर्ण सारी माल–मलाई खा रहे है। अब आर्थिक आधार पर आरक्षण की शुरूआत करके उस योजना में सेंध लगाई गयी है। स्वाभाविक है कि अब माल–मलाई खा रहे अवर्ण और अधिक आरक्षण की मांग करेगें और तब धीरे–धीरे समाज में आरक्षण पर एक खुली बहस खडी होगी हो सकता है कि अब तक के पचास प्रतिशत आरक्षण में भी धीरे–धीरे आर्थिक आधार को घुसाने का प्रयास हो और ज्यों ही यह आर्थिक आधार अवर्णो में घुसेगा त्यों ही सारे बुद्धिजीवी अवर्ण इस आर्थिक आधार के विरूद्ध एकमत होकर आरक्षण पूरी तरह समाप्त करने की मांग करेगे। कोई आदिवासी हरिजन या पिछडे वर्ग का नेता यह कभी नही चाहेगा कि उनकी जगह उनकी जाति के गरीब लोगों को आरक्षण का लाभ मिले। वो चाहेंगे कि लाभ मिले तो उनके परिवार को अन्यथा आरक्षण खत्म कर दिया जाये।

मैं वर्तमान आरक्षण विधयेक को आरक्षण समाप्त करने की दिशा में एक अच्छा कदम मानता हूँ और वर्तमान संसद के प्रस्ताव की प्रशंसा करता हूँ।

सामयिकी

भारत में आम चुनाव निकट हैं। परिणाम अनिश्चित हैं। संभावनाओं और अपनी इच्छाओं के तालमेल से कुछ अनुमान लगने शुरू हुये हैं। आज से ठीक पांच वर्ष पहले मैंने अपनी इच्छा व्यक्त की थी कि भारत के प्रधानमंत्री के रूप में मेरी पसंद के क्रम में सबसे अच्छे मनमोहन सिंह, दूसरे नीतिश कुमार, तीसरे अरविन्द केजरीवाल तथा चौथे में नरेन्द्र मोदी को माना था।

मैंने लिखा था कि सबसे अधिक संभावना मोदी की ही दिखती है क्योंकि सोनिया जी ने पुत्र मोह में मनमोहन सिंह को दौड से बाहर कर दिया है और राहुल में योग्यता नहीं है।

पांच वर्ष में काफी कुछ बदल चुका है। मेरी सोच में भी कुछ बदलाव आया है। अरविन्द केजरीवाल की जगह मैं अखिलेश यादव का नाम रखता हूँ तथा मनमोहन सिंह की जगह राहुल गांधी का। अब मेरी सोच है कि सर्वश्रेष्ठ प्रधानमंत्री नीतिश कुमार, दूसरे में नरेन्द्र मोदी, तीसरे में अखिलेश यादव तथा अन्त में मजबूरी में राहुल गांधी हों किन्तु किसी भी परिस्थिति में कोई पाचवां न हो। राहुल को भी बिल्कुल लाचारी में ही स्वीकार करना चाहिये। वैसे मेरी इच्छा चाहे जो हो किन्तु संभावना नरेन्द्र मोदी के लिये अधिक दिखती है। परिणाम कभी मेरी इच्छानुसार तो होते नहीं। दो हजार चार में मैं अटल जी को चाहता था और चौदह में मनमोहन सिंह जी को किन्तु परिणाम तो अपनी इच्छानुसार होते हैं मेरी इच्छानुसार नहीं। फिर भी मैंने अपनी इच्छा और संभावनाओं के तालमेल से अनुमान व्यक्त किया है।

सामयिकी

मैं पिछले पचास–साठ वर्षो से लगातार यह सुझाव देता रहा हूँ कि कृत्रिम उर्जा अथवा डीजल, पेट्रोल, बिजली, गैस, कोयला आदि का मूल्य ढाई गुना कर देना चाहिये तथा गरीब, ग्रामीण, श्रमजीवी, कृषि उत्पादन तथा उपभोग की वस्तुएं टैक्स फ्री कर देनी चाहिये। इससे डीजल पेट्रोल का आयात घटेगा पर्यावरण सुधरेगा। श्रम की मांग बढेगी अन्य अनेक लाभ भी होगे किन्तु मेरी बात कभी भारत सरकार ने नहीं सुनी इसके विपरीत लगातार कृत्रिम उर्जा के मूल्य घटाये गये जिससे उसकी खपत बढती चली गई और आयात भी बढता गया।

कुछ दिनों पूर्व फ्रांस की सरकार ने डीजल पेट्रोल का दाम बढाने का प्रयास किया जिसका वहां के सम्पन्न लोगों ने भारी विरूद्ध किया। आज मुझे सुनकर सुखद आश्चर्य हुआ कि दुनियां के एक देश जिम्बावे ने एकाएक डीजल, पेट्रोल का दाम ढाई गुना कर दिया है। पहले वहां 88 प्रति लीटर मूल्य था तो अब एकाएक 235 रूप्या कर दिया गया है। वहां भी बडे लोगो ने प्रदर्शन कराने शुरू कर दिये है किन्तु सरकार मजबूती से खडी है जो हिम्मत भारत सरकार नही दिखा सकी। वह हिम्मत जिम्बावे ने करके एक सराहनीय काम किया है। उसकी पहल दुनियां के लिये मार्गदर्शक बनेगी।

उत्तरार्ध

ज्ञान यज्ञ का आयोजन सिंगरामउ, जौनपुर, उत्तर प्रदेश में

शुक्रवार दिनॉक 21 दिसम्बर 2018 को राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय, जौनपुर में डॉ. जयकुमार जी ने ''समान नागरिक सहिंता'' विषय पर ज्ञान–यज्ञ कार्यक्रम आयोजित किया। कार्यक्रम में स्नातक और परास्नातक के विद्यार्थियों तथा कुछ अन्य प्रबुद्धजनों ने भाग लिया। कार्यक्रम में मुख्य वक्ता के रूप में ज्ञान–यज्ञ परिवार के राष्ट्रीय संयोजक श्री अभ्युदय भाई जी ने समान नागरिक सहिता पर चर्चा करते हुये कहा कि संविधान के अनुच्छेद 15 के तहत धर्म, लिंग, क्षेत्र व भाषा आदि के आधार पर समाज से भेद–भाव नहीं करता है परन्तु संविधान के अनुच्छेद 26 से लेकर 31 तक के कुछ ऐसे व्यवधान है जिससे हिन्दुओं के सांस्कृतिक, शैक्षिक, धार्मिक, संस्थानों व धार्मिक ट्रस्टों को विवाद की स्थिति में शासन द्वारा अधिग्रहण किया जाता रहा है। जबकी अल्पसंख्यकों के संगठनों आदि में विवाद होने पर शासन कोई हस्तक्षेप नहीं करता। यह विशेषाधिकार हमारे सामाजिक सदभाव को प्रभावित करती है। भारत सवा सौ करोड व्यक्तियों का देश होना चाहिये न कि जातियों सम्प्रदायों और धर्मो का। उन्होंने कहॉ कि नागरिक संहिता और अचार संहिता का अन्तर नहीं समझा गया न आज तक समझा जा रहा है। अचार संहिता और नागरिक संहिता को एक करने के कारण समाज में अनेक समस्यायें बढती गई। समाज टूटता गया तथा राजनेता मजबूत होते चले गये। अब जरूरत है कि वर्ग विद्वेष को खत्म करने के लिये हम सबको समान नागरिक संहिता के लिये संघर्ष करना पडेगा। संगठन मंत्री विपिन तिवारी ने समान नागरिक सहिता पर अपने विचार व्यक्त करते हुये कहा कि समान नागरिक संहिता का प्रावधान हमारे संविधान में आरंभ से ही है। और इसे धीरे–धीरे लागू करने की अनुशंसा 44 में की गई है। परन्तु अल्पसंख्यक वोट बैंक के लालच में व इमामों और पादरियों के दबाव में नेहरू ने अनेक विवादों के बाद भी समान नागरिक संहिता के प्रावधान को संविधान के मौलिक अधिकारों की सूची से हटाकर नीति निदेशक तत्वों में डलवा दिया। परिणाम स्वरूप यह विषय न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर हो गया। न्यायायय अब इस विषय पर परामर्श देने के सिवा कुछ नहीं कर सकती।

कार्यक्रम के संयोजक डॉ अजय कुमार मिश्र नी ने कहा कि यह व्यवस्था सामाजिक सदभाव के लिये बहुत आवश्यक है। इस विषय पर अगर ज्ञान–यज्ञ परिवार कोई आंदोलन करता है तो हम सब तन, मन, धन से परिवार के साथ रहेगे। कार्यक्रम के प्रारंभ में अभ्युदय जी ने स्पष्ट किया कि ज्ञान–यज्ञ परिवार देश भर में ज्ञान यज्ञ का आयोजन जनजागरण के माध्यम से समाज सशक्तिकरण तथा राज्य कमजोरी करण करके दोनो के बीच संतुलन बनाने का प्रयत्न कराता है। जिसकी रूप रेखा इस तरह होती है जैसे–आधे घण्टे का भावनात्मक धार्मिक आयोजन तथा ढाई घण्टे का किसी विषय पर स्वतंत्र विचार मंथन होता है।

ज्ञान–यज्ञ परिवार के सदस्य के लिये आवश्यक है कि वह कम से कम वर्ष में एक बार कहीं ऐसे ज्ञान–यज्ञ का आयोजन करें अथवा किसी भी यज्ञ में शामिल हो। जौनपुर की बैठक में श्री डॉ. जय कुमार मिश्र जी ने ज्ञान यज्ञ की सदस्यता ग्रहण करते हुये जिम्मेदारी ली कि वे वर्ष में एक बार या अधिक बार ज्ञान–यज्ञ का आयोजन करायेगे। डॉ. गिरीश मणि त्रिपाठी जी ने भी वर्ष में एक बार ज्ञान–यज्ञ करवाने का संकल्प लिया। श्री अभ्युदय जी ने कहा कि ज्ञान–यज्ञ परिवार कोई आंदोलन नहीं करता किन्तु यदि कोई व्यक्ति ऐसा आंदोलन खडा करता है तो बजरंग मुनि सामाजिक शोध संस्थान ऐसे आंदोलन की सहायता कर सकता है।